RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-06
June-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

हिंदी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता के प्रश्न

(विशेष संदर्भ बीसवीं सदी के अंतिम दशक)

अनुज कुमार तरुण

हिन्दी विभाग, श्री अरबिन्द कॉलेज (सांध्य), दिल्ली विश्वविद्यालय

सदी के अंतिम दशक में स्त्री विमर्श और दलित विमर्श साहित्य के केंद्र में है। इसका कारण शायद यह है कि भारतीय परिस्थितियों में केवल नारी विमर्श और दलित विमर्श के पास ही परिवर्तन का एजेण्डा है। इन दोनों में साहित्य के पुरुषवादी और ब्राह्मणवादी सौंदर्यशास्त्र को खारिज कर दिया है। यह देखना बेहद सुखकर है कि इनके द्वारा लिखित उपन्यासों में स्त्री विमर्श महज 'काउच लेखन' नहीं है बल्कि इसमें पुरुष सत्ता संरचना को बदल देने का आग्रह भी है और अलग भाषायी तेवर भी।

नयी योरोपीय वैज्ञानिक संस्कृति और भारतीय धार्मिक संस्कृति की टकराहट के फलस्वरूप भारत में 19वीं शती के आरंभ में धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर पुनर्जागरण आंदोलन की नींव पड़ती है। डॉ. एम. एन. श्रीनिवास ने भारतीय समाज के शुरूआती परिवर्तनशीलता के कारक बिंदु की पहचान करते हुए कहा है कि – ''अंग्रेज अपने साथ नई औद्योगिक संस्थाएँ, ज्ञान, विश्वास और मूल्य लेकर आए थे। नई औद्योगिक और उसके कारण संचार क्रांति में होने वाली क्रांति की सहायता से अंग्रेजों ने देश का ऐसा एकीकरण किया जैसा पहले उसके इतिहास में कभी नहीं हुआ था।''[1] इस प्रकार नई प्रौद्योगिकी, ज्ञान, विज्ञान ने तार्किक क्षमता एवं नए मूल्य को प्रतिष्ठित किया एवं मनुष्य के व्यक्ति होने की प्रक्रिया के रूप में आधुनिकता एवं आधुनिक संस्थाओं का प्रवेश होता गया। रामधारी सिंह 'दिनकर' आधुनिकता को परिभाषित करते हुए कहते हैं – ''जिसे हम आधुनिक कहते हैं वह एक प्रक्रिया का नाम है। यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया नैतिकता में उदारता बरतने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया बुनियादी बनने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म से सही रूप में पहुँचने की प्रक्रिया है। आधुनिक वह है जो मनुष्य की ऊँचाई, उसकी जाति या गोत्र से नहीं बल्कि उसके कर्म से नापता है। आधुनिक वह है जो मनुष्य–मनुष्य को समान समझता है।''[2] इस प्रकार आधुनिक मानसिकता से लैस मनुष्य मृत परंपराओं, रूढ़ियों, अंधविश्वासों एवं सांस्कृतिक वर्जनाओं को तोड़ता हुआ नवीन, अर्थपूर्ण एवं सारगर्भित मूल्यों की तलाश, स्थापना एवं विकास की ओर उन्मुख होता है।

इस क्रांतिकारी मूल्य मीमांसा के कारण ही स्त्री बीसवीं सदी के अंतिम दशक में परिवार, समाज, धर्म, संस्कृति, राजनीति, साहित्य, कला, व्यवसाय सभी क्षेत्रों में अपनी उपस्थिति दर्ज करा रही है। पिछली पूरी सदी उसके अस्तित्व व अस्मिता के संघर्ष की सदी थी। अतीत के दुख व भविष्य के सुनहले सपने को व्याख्यायित करती प्रभा खेतान कहती है,''तमाम कठिनाइयों के बावजूद आज की स्त्री की दृष्टि में उसका भविष्य जितना सुखद और रोचक है, उतना उसका अतीत कभी नहीं रहा। वर्तमान के आधार पर ही कहा जा सकता है कि हम स्त्रियों का अतीत सुखद नहीं था। क्या था हमारे अतीत में? चिंताओं पर जलती हुई औरतें। घूंघट की आड़ में रोती घुटती हुई औरतें। शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के लिए तरसती हुई औरतें। समाज के नियम इतने कठोर कि विरोध में स्त्री का एक भी शब्द बोलना नामुमकिन।[3] आज वह परिवार में पढ़ी–लिखी सुसंस्कृत, आदर्श गृहिणी है तो व्यवसाय में कुशल संचालिका। वह प्रत्येक कार्यभार के हर उत्तरदायित्व को वहन करने में सक्षम व तत्पर दिखाई देती है। विश्व परिदृश्य में वह प्रधानमंत्री, विदेशमंत्री, राजदूत से लेकर गाँवों में पंचायत के मुखिया व सरपंच पद पर आसीन हैं।

इसके बावजूद आधुनिक नारी की समस्याएँ कम हुई हो ऐसा नहीं है क्योंकि 'नर समान नारी' की अवधारणा के बाद भी न जाने कितने नरकों से उसे गुजरना पड़ता है। परिवार में मूल्य व आधुनिकता का द्वंद्व, काम व मातृत्व का द्वंद्व तो है ही शारीरिक प्रताड़ना व मानसिक यातना भी कम नहीं। व्यवसाय में उसकी योग्यता को पुरुषों से कमतर नापा जाता है। यौन उत्पीड़न की बढ़ती घटनाओं से चलते एक असुरक्षा का भाव सदा उसका पीछा करता है।

साहित्य में 'स्त्री' आज किसी पहचान की मुहताज नहीं है एक से एक बेहतर लेखिकाएँ उभर कर आ रही है जो स्त्री मुद्दों, संवेदनाओं, समस्याओं के साथ समाज, परिवेश व संस्कृति आदि पर भी व्यापक सोच व तर्क संगत दृष्टिकोण से काम लेती है। इनमें मुख्यतः कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, महाश्वेता देवी आदि से आरंभ यात्रा को शिवानी, ममता कालिया, सूर्यबाला, नमिता सिंह, राजी सेठ,

---

1 आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, श्रीनिवास, एम.एन., पृ० 52

2 आधुनिक बोध दिनकर, रामधारी सिंह,पृ० 28

3 निषेध और अमूर्तन में फंसा, 'स्त्रीत्व का मानचित्र', प्रभा खेतान, हंस, सितंबर 2000, पृ० 33

RRIJM 2015, All Rights Reserved

मंजुल भगत, शशिप्रभा शास्त्री, कृष्णा अग्निहोत्री, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, मणिका मोहिनी, दीप्ति खंडेलवाल, सुनीता जैन, नासिरा शर्मा, मेहरून्निसा परवेज, सोमवीरा, मैत्रेयी पुष्पा, गगन गिल, कात्यायनी, अलका सरावगी, अनामिका, मृणाल पाण्डे आदि सब मिलकर अपने सार्थक सर्जन के बल पर अनवरत आगे बढ़ाती रही है।

बीसवीं शताब्दी में स्त्री अपने व्यक्तित्व को नए सिरे से पहचानने और पाने की कोशिश करती है। वह रिश्तों, समाज, परिवार एवं परिवेश में अपनी भूमिका तय करती है एवं नई व्याख्या करती है। मातृत्व अब स्त्रीत्व की उपलब्धि रूप में व्याख्यायित नहीं होता। मातृत्व की आवश्यकता एवं दैहिक संबंधों में नैतिकता के मापदंडों पर प्रश्न चिह्न लग रहे हैं। अब स्त्री 'अर्थ' एवं 'सेक्स' के स्तर पर पुरुषों से मात खाने को तैयार नहीं। अतः स्त्री चेतना, स्त्री स्वतंत्रता, नारी विद्रोह, यौन स्वतंत्रता, स्त्री अस्मिता आदि प्रश्नों पर स्त्रियों ने विचार करना आरंभ किया।

हिंदी साहित्य में नारी विषयक अनेक उपन्यासों का सृजन हुआ है। इस दृष्टि से बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में 'अर्द्धनारीश्वर', 'दिलोदानिश', 'मुझे चाँद चाहिए' 'इदन्नमम्', 'कठगुलाब', 'आवां', 'आल्माकबूतरी' प्रमुख हैं जिनमें नारी के आत्म स्वाभिमान, जीवन लक्ष्य, समाज स्थिति बदलते युग प्रतिमानों में नारी छवि के शारीरिक–मानसिक उत्पीड़न के साथ कुछ कर गुजरने की चाहत, नवीन युग मूल्यों में स्वयं की अस्मिता व सार्थकता खोजने के प्रयास आदि बिंदु महत्वपूर्ण हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासकारों ने सर्वाधिक स्त्री के शारीरिक व मानसिक शोषण को उपन्यासों का वर्ण्य विषय बनाया है।

हिन्दी साहित्य में नारी विषयक जितना भी लिखा गया उससे यह बात तो साफ पता लगती है कि नारी मुक्ति का स्वप्न न तो पुरुष विरोध में और न ही पुरुष जैसा बनने के प्रयास में पूरा हो सकता है इसके लिए स्त्री–पुरुष का परस्पर पोषक व पूरक बनना पड़ेगा। यह स्थिति तभी संभव है जब स्त्री–स्त्री का न केवल सहयोग करे बल्कि अधिकारों के लिए भी लड़े। मातृत्व को बेबसी, बंधन लाचारी के रूप में न देखकर उसे सम्मान से जोड़े। हिन्दी के लगभग सभी उपन्यासकार स्त्री की सार्थकता उसका गौरव मातृत्व में देखते हैं लेकिन यही मातृत्व जब समाज में विरोध, अपमान पाता है तो वह स्त्रीत्व की अवमानना उसका अपमान है। इसके बिना स्वस्थ समाज के निर्माण का सपना झूठा है क्योंकि स्त्री ही भविष्य को रूप, रंग, आकार, गरिमा, गौरव, विकास व जीवन देती है इसके बिना कोई भी समाज पूर्ण नहीं होता।

'मुझे चाँद चाहिए' की वर्षा सोचती है कि, ''प्रकृति में स्त्री इसीलिए विशिष्ट है क्योंकि वह जननी है।''[4] वह समर्थ तथा आत्मनिर्भर है इसीलिए हर्ष की मृत्यु के उपरांत वह उसके शिशु को विरोध के खिलाफ जाकर भी जन्म देती है। चित्रा मुद्गल भी मातृत्व को स्त्री अस्मिता व आत्मनिर्भरता से जोड़कर पाठक के सम्मुख रखती है ''किरपू दुसाध मरा नहीं है। मरेगा भी नहीं। जब तक औरत अपने पेट को उसकी लातों के प्रहार से स्वयं को बचाना नहीं सीख जाती...''[5] 'दिलोदानिश' की महक बानो सारी जिंदगी उपेक्षा, तिरस्कार से उतना आहत नहीं होती जितना अपनी ही संतान के विवाह संबंधी घटनाक्रम में उपेक्षित होने पर। मातृत्व की उपेक्षा उसे आहत कर अपने अस्तित्व की पहचान व अस्मिता की सार्थकता दोनों ही खोजने पर विवश कर देती है। 'कठगुलाब' में मृदुला गर्ग मातृत्व के अपमान को स्त्रीत्व का अपमान मानती है। नारी अपनी सृजन शक्ति के कारण ही पुरुष से बड़ी है। पुरुष की आत्मनिष्ठता, घुन्नापन्न, स्वार्थी एकनिष्ठ प्रवृत्ति व संवेदनहीनता नारी के सृजन, अस्मिता व कृति को छोड़का करके देखता है।

एक स्वस्थ, खुशहाल, संवेदनायुक्त, प्रगतिशील परिवार, समाज, देश के निर्माण में स्त्री की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उसके स्त्रीत्व का अपमान, अधिकारों की अवहेलना व दोयम दर्जे का व्यवहार, किसी भी समाज के लिए शुभ संकेत नहीं है। भारतीय नारी ने दुःख को नियति मान सदैव स्वीकार किया है लेकिन यह नियति अब सीमा लांघ अधिक जागरूक, सचेत होकर सम्मान, सहयोग की मांग कर रही है।

इस दृष्टि से सुरेन्द्र वर्मा का उपन्यास मुझे चाँद चाहिए सबसे बेहतर उदाहरण है।'मुझे चांद चाहिए' में 'प्रेम के कई कोण व परिभाषाएं है।आधुनिक व्यावसायिक–प्रतियोगिता से पूर्ण जीवन में 'विवाह' मानव जीवन की अनिवार्य स्थिति नहीं रहा है। उसमें भी 'परिवार' द्वारा लिया गया फैसला प्रायः आधुनिक युवा–युवतियों को स्वीकार नहीं होता। उपन्यास मुझे चाँद चाहिए की नायिका 'सिलबिल'' केवल विवाह' का विरोध नहीं करती है अपितु 'प्रेम'' में भी अपने चुनाव को महत्वपूर्ण मानती है। पूरे उपन्यास में स्थान–स्थान सिगरेट, शराब, रतिक्रिया प्रसंगों का वर्णन चाय, कॉफी के साथ–साथ व्हसिकी, वाइन, चरस का उपयोग पात्रों की मनस्थिति की दुरूहता व वातावरण की बोझिलता को व्यक्त करने के लिए किया गया है। 'झिल्ली' द्वारा 'जनाडू' डिस्को में जाना, व्हसिकी पीना, मटन हैमबर्गर खाना और लॉर्डराम को 'वो पत्थर' करार देने के साथ–साथ नए युग में औरत की छवि का खुलासा उसकी यह पंक्तियां करती है ''आइ एम ए मॉडर्न गर्ल। आइ विल स्टैंड द ऑफिस एंड लुक ऑफ्टर द फैमिलीज बिजनेस।''

इस तरह सदियों से चले आ रहे पुरुष वर्चस्व को आधुनिक नारी ने चुनौती दे दी है। उत्तर–आधुनिक युग के नारीवादी आंदोलन ने समाज के साथसाथ उपन्यास का रुख भी बदल दिया है। अब तक उपन्यास के केन्द्र में पुरुष उपस्थित है। (उदाहरण के रूप में कथा सम्राट प्रेमचंद के

[4] मुझे चाँद चाहिए, सुरेन्द्र वर्मा, पृ० 556

[5] आवां, चित्रा मुद्गल, पृ० 540

उपन्यासों का केन्द्र 'नायक' है चाहे वह 'गोदान' का 'होरी' हो या 'रंगभूमि' का 'सूरदास'।) स्त्रियां पुरुष की अनुकूलता में हैं और उन्हीं के तर्कों की सापेक्षता में दिखाई देती है। लेकिन अब यह केन्द्र बदल रहा है। 'कृष्णा सोबती', 'मृदुला गर्ग', 'मैत्रेयी पुष्पा', 'चित्रा मुदगल' के उपन्यासों के केन्द्र में स्त्रियां है। 'महकबानो', 'स्मिता', 'अल्मा', 'कदमबाई', और 'नमिता' आदि स्त्री पात्र इनके उपन्यासों के केन्द्र में है। इन्हीं के पक्ष में सारे तर्क गढ़े गए हैं।

ये सभी पात्र आधुनिक नारी की मानसिकता व बदलती युग स्थितियों में उसके विद्रोह, संघर्ष, साहस, अस्मिता व प्रेम की अनंत अभिलाषा को व्यक्त करते हैं। इसे 'देह' का विमर्श कहकर भी दरकिनार नहीं किया जा सकता। पुरुष सदियों से स्त्री को 'देह' मान 'स्वामी' बना रहा और स्त्री का अस्तित्व व उसकी अस्मिता दोनों उसकी दया पर निर्भर रही हैं। अब से पहले स्त्री स्वयं को मात्र 'देह' मानने से इंकार करती रही तो घर–बाहर दोनों क्षेत्रों में उसका दर्जा 'दोयम' ही रहा। लेकिन अब जब स्त्री ने स्वयं को 'देह' मान लिया है, जिसकी स्वामी वह खुद है तो पुरुष स्वामित्व के सारे समीकरण गड़बड़ा गए हैं।

आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति का प्रभाव नारी पर भी पड़ा है। अपने व्यक्तित्व की सार्थकता व अस्मिता की तलाश में, बोल्डनेस में वह बहुत आगे निकल गई है। मृदुला गर्ग के शब्दों में, ''नारी को आज विज्ञापन के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। लोग सिर्फ यह सोचते हैं कि स्त्री घर की शोभा बनी रहे, जैसे भौतिक उपकरणों का संचय ही उसकी नियति हो।''[6] नारी संबंधी समस्याओं विचारों ने आज के युग में विमर्श का रूप धारण कर लिया है। अपनी सार्थकता को प्रामाणित करती नारी ने हर क्षेत्र में पहल की है लेकिन अभी भी बहुत कसर बाकी है जिन्हें नारी शिक्षा, अर्थ, आत्मनिर्भर, स्वावलम्बन, परस्पर सहयोग व जागरूकता से ही सुलझाया जा सकता है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची

1. श्रीनिवास, एम.एन-आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन,
2. इस्सर, देवेंद्र – संघर्ष, परिवर्तन और साहित्य, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्रथम संस्करण 1996
3. सं० चन्द्र, बिपिन मुखर्जी, मृदुला मुखर्जी आदित्य – आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002
4. सिंहरामधारी -आधुनिक बोध दिनकर
5. निषेध और अमूर्तन में फंसा, 'स्त्रीत्व का मानचित्र', प्रभा खेतान, हंस, सितंबर 2000
6. दुबे, अभय कुमार – लोकतंत्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
7. दुबे, अभय कुमार – भारत का भूमण्डलीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
8. पचौरी, सुधीश – उत्तर–आधुनिक साहित्यिक विमर्श, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000
9. जोशी, पी.सी. – परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण

RRIJM 2015, All Rights Reserved